

# हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता में कुण्डलिनी साधना और राजयोग की प्राप्ति

मनीष कुमार

Student, Shardhanand Vedic shodh sansthan, Gurukul kangri deemed to be university Haridwar

## शोध सार

भारतीय योग परम्परा में कुण्डलिनी साधना को आध्यात्मिक उत्कर्ष की अत्यन्त महत्वपूर्ण साधना माना गया है। हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ हठयोग प्रदीपिका तथा शिव संहिता इस साधना का विस्तृत एवं व्यवस्थित निरूपण प्रस्तुत करते हैं। दोनों ग्रन्थों में कुण्डलिनी को मानव-शरीर में स्थित सुप्त आध्यात्मिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसके जागरण से सुषुम्ना नाड़ी सक्रिय होती है तथा साधक क्रमशः चित्त-स्थैर्य, मनोलय, समाधि एवं राजयोग की अवस्था का अनुभव करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता में प्रतिपादित कुण्डलिनी साधना के स्वरूप, उसके दार्शनिक आधार, साधनात्मक प्रक्रिया तथा राजयोग की प्राप्ति में उसकी भूमिका का विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि दोनों ग्रन्थ कुण्डलिनी को केवल रहस्यवादी अथवा तान्त्रिक अवधारणा के रूप में नहीं, बल्कि योग-साधना की केन्द्रीय शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। यद्यपि दोनों ग्रन्थों की प्रस्तुति-पद्धति में कुछ भिन्नताएँ हैं, तथापि उनका मूल प्रतिपाद्य समान है कि प्राण के सुषुम्ना मार्ग में प्रवाहित होने तथा कुण्डलिनी के जागरण के बिना राजयोग की सिद्धि सम्भव नहीं है। शोध में तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में हठयोग प्रदीपिका तथा शिव संहिता के मूल संस्कृत पाठ का अध्ययन किया गया है। दोनों ग्रन्थों में वर्णित आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा, नाड़ी-शोधन तथा शक्तिचालन की प्रक्रियाओं का समन्वित अध्ययन करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि कुण्डलिनी साधना वस्तुतः शरीर, प्राण एवं चित्त के क्रमिक परिष्कार की वैज्ञानिक साधना है, जिसका परम लक्ष्य राजयोग एवं समाधि की प्राप्ति है। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कुण्डलिनी जागरण हठयोग की सम्पूर्ण साधना का केन्द्रबिन्दु है तथा राजयोग उसकी स्वाभाविक परिणति है। दोनों ग्रन्थ साधना की बाह्य विधियों की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि, गुरु-परम्परा, नियमित अभ्यास तथा प्राण-नियन्त्रण को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। इस प्रकार कुण्डलिनी साधना को आध्यात्मिक चेतना के क्रमिक उत्कर्ष की वैज्ञानिक एवं अनुशासित प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है।

**कूट शब्द** - कुण्डलिनी, हठयोग, राजयोग, सुषुम्ना, प्राणायाम, शक्तिचालन, समाधि, शिव संहिता, हठयोग प्रदीपिका।

## भूमिका

भारतीय ज्ञान-परम्परा में योग केवल शारीरिक अनुशासन का विषय नहीं, बल्कि आत्मानुभूति एवं परमचैतन्य की प्राप्ति का एक समन्वित आध्यात्मिक विज्ञान है। वैदिक, उपनिषदिक तथा योगिक साहित्य में योग के विविध स्वरूपों का निरूपण प्राप्त होता है, किन्तु मध्यकालीन योग-साहित्य में हठयोग ने साधना को एक व्यावहारिक एवं क्रमबद्ध पद्धति के रूप में प्रतिष्ठित किया। हठयोग का मूल उद्देश्य शरीर, प्राण एवं मन का ऐसा परिष्कार करना है, जिसके परिणामस्वरूप साधक राजयोग

अथवा समाधि की अवस्था तक पहुँच सके। इसीलिए हठयोग को राजयोग का आधार तथा उसकी पूर्वपीठिका माना गया है।<sup>1</sup> हठयोग प्रदीपिका तथा शिवसंहिता दो ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, जिन्होंने कुण्डलिनी साधना का अत्यन्त व्यवस्थित प्रतिपादन किया है। इन ग्रन्थों के अनुसार मानव-शरीर केवल स्थूल भौतिक संरचना नहीं है, बल्कि उसमें नाडी-तन्त्र, चक्र एवं प्राणशक्ति का एक सूक्ष्म आध्यात्मिक आयाम भी विद्यमान है। इसी सूक्ष्म तन्त्र के मूलाधार में स्थित सुप्त शक्ति को 'कुण्डलिनी' कहा गया है, जिसके जागरण से साधक की आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ होती है।<sup>2</sup> हठयोग प्रदीपिका में कुण्डलिनी को समस्त योगतन्त्र का आधार स्वीकार करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि जब तक यह शक्ति सुप्त रहती है, तब तक सुषुम्ना मार्ग सक्रिय नहीं होता और प्राण का ऊर्ध्वगमन सम्भव नहीं हो पाता। कुण्डलिनी के जागरण के उपरान्त ही ब्रह्मद्वार का उद्घाटन होता है तथा साधक मनोन्मनी एवं राजयोग की अवस्था की ओर अग्रसर होता है।<sup>3</sup> दूसरी ओर शिव संहिता कुण्डलिनी का स्वरूप केवल योगिक क्रिया तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे विश्वव्यापी पराशक्ति के रूप में निरूपित करती है। ग्रन्थ के अनुसार यही शक्ति सृष्टि, स्थिति एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष की मूल प्रेरक सत्ता है। साधना के माध्यम से यही शक्ति साधक के अन्तःकरण को शुद्ध करती हुई उसे आत्मसाक्षात्कार की दिशा में अग्रसर करती है।<sup>4</sup> दोनों ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कुण्डलिनी साधना का उद्देश्य चमत्कारिक सिद्धियों का अर्जन नहीं, अपितु प्राण, मन एवं चित्त का समन्वय स्थापित कर राजयोग की प्राप्ति करना है। आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा तथा नाडी-शोधन जैसी समस्त साधनाएँ इसी लक्ष्य की पूर्ति के साधन हैं। अतः कुण्डलिनी जागरण हठयोग की सम्पूर्ण साधना का केन्द्रीय तत्त्व है, जबकि राजयोग उसकी परिपूर्ण अवस्था का द्योतक है।<sup>5</sup> प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य *हठयोग प्रदीपिका* एवं *शिव संहिता* में प्रतिपादित कुण्डलिनी साधना की अवधारणा का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। विशेष रूप से यह विवेचना की जाएगी कि दोनों ग्रन्थों में कुण्डलिनी के स्वरूप, उसके जागरण की प्रक्रिया, साधना-पद्धति तथा राजयोग की प्राप्ति के मध्य किस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाएगा कि इन ग्रन्थों की शिक्षाएँ आधुनिक योग-अध्ययन के सन्दर्भ में किस प्रकार प्रासंगिक हैं।

### कुण्डलिनी साधना का दार्शनिक स्वरूप

भारतीय योगदर्शन में कुण्डलिनी का स्वरूप केवल एक सूक्ष्म जैविक अथवा आध्यात्मिक शक्ति के रूप में नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि की मूल चेतन-शक्ति के रूप में प्रतिपादित किया गया है। हठयोग की साधना-पद्धति में इसका महत्त्व इस कारण भी बढ़ जाता है कि यही शक्ति साधक को स्थूल चेतना से सूक्ष्म चेतना तथा अन्ततः राजयोग की परम अवस्था तक ले जाने का माध्यम बनती है। इस दृष्टि से कुण्डलिनी न केवल योगमार्ग का केन्द्रीय तत्त्व है, बल्कि सम्पूर्ण साधना-विधान का प्राण भी है।<sup>6</sup> शिव संहिता में कुण्डलिनी को विद्युत् के समान दीप्तिमयी, पराशक्ति तथा सुषुम्ना मार्ग में स्थित चेतना के रूप में वर्णित किया गया है। यह शक्ति अपनी कुण्डलित अवस्था में रहते हुए भी सम्पूर्ण सृष्टि की आधारभूत क्रियाशीलता का संचालन करती है। इस प्रकार कुण्डलिनी का स्वरूप केवल व्यक्तिगत साधना तक सीमित न होकर सार्वभौमिक सृजन-शक्ति का भी द्योतक है।<sup>7</sup> इसी भाव को हठयोग प्रदीपिका अधिक व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करती है। वहाँ कुण्डलिनी को समस्त योगतन्त्रों का आधार कहा

<sup>1</sup> *हठयोग प्रदीपिका*, 2/76।

<sup>2</sup> *शिव संहिता*, 2/23।

<sup>3</sup> *हठयोग प्रदीपिका*, 3/1।

<sup>4</sup> *शिव संहिता*, 5/76-79।

<sup>5</sup> *हठयोग प्रदीपिका*, 2/77।

<sup>6</sup> *हठयोग प्रदीपिका*, 3/1।

<sup>7</sup> *शिव संहिता*, 2/23।

गया है तथा स्पष्ट किया गया है कि इसके जागरण के बिना सुषुम्ना का प्रवाह सक्रिय नहीं होता और न ही राजयोग की उपलब्धि सम्भव होती है। इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में कुण्डलिनी को योगमार्ग का अनिवार्य आधार स्वीकार किया गया है, यद्यपि शिव संहिता उसके दार्शनिक स्वरूप पर विशेष बल देती है, जबकि हठयोग प्रदीपिका उसके साधनात्मक पक्ष को अधिक प्रमुखता प्रदान करती है।<sup>8</sup> अतः कुण्डलिनी साधना का वास्तविक उद्देश्य किसी चमत्कारिक शक्ति का अर्जन नहीं, बल्कि चेतना के क्रमिक परिष्कार के माध्यम से साधक को आत्मबोध एवं राजयोग की अवस्था तक पहुँचाना है। यही कारण है कि दोनों ग्रन्थों में कुण्डलिनी को साधना का साधन भी माना गया है और साधना की सिद्धि का सेतु भी।

### **कुण्डलिनी का स्थान एवं सुषुम्ना नाड़ी से उसका सम्बन्ध**

योगशास्त्र में कुण्डलिनी का स्थान केवल शरीर के किसी भौतिक अंग तक सीमित नहीं माना गया है, अपितु उसे सूक्ष्म शरीर की केन्द्रीय चेतना-शक्ति के रूप में निरूपित किया गया है। समस्त नाड़ियों का उद्गम जिस आधार-प्रदेश से माना जाता है, वहीं कुण्डलिनी शक्ति अपनी सुप्तावस्था में स्थित रहती है। यह सुप्ता निष्क्रियता का बोधक नहीं है, बल्कि अव्यक्त चेतना की वह अवस्था है, जो उपयुक्त साधना, गुरु-उपदेश तथा प्राण-नियमन के द्वारा जागृत होकर साधक के आध्यात्मिक उत्कर्ष का माध्यम बनती है।<sup>9</sup> इडा और पिङ्गला के मध्य स्थित सुषुम्ना नाड़ी ही वह दिव्य मार्ग है जिसमें कुण्डलिनी शक्ति का वास्तविक अधिष्ठान माना गया है। इसी सुषुम्ना में षट्चक्रों का क्रमिक विन्यास है, जिनके माध्यम से चेतना की आरोही यात्रा सम्पन्न होती है। अतः सुषुम्ना केवल एक सूक्ष्म नाड़ी नहीं, बल्कि साधना का आध्यात्मिक पथ है, जिसके सक्रिय होने पर ही योग का आन्तरिक विकास सम्भव होता है।<sup>10</sup> हठयोग प्रदीपिका भी इसी तथ्य का समर्थन करते हुए सुषुम्ना को ब्रह्ममार्ग, महापथ तथा शून्यपदवी जैसे पर्यायों से अभिहित करती है। इससे स्पष्ट होता है कि योग की सम्पूर्ण साधना अन्ततः सुषुम्ना के उद्घाटन पर ही केन्द्रित है। जब तक प्राण इडा एवं पिङ्गला के द्वन्द्वात्मक प्रवाह में गतिशील रहता है, तब तक मन भी चञ्चल बना रहता है; किन्तु सुषुम्ना में प्रवेश करते ही प्राण और मन दोनों क्रमशः स्थैर्य की ओर अग्रसर होते हैं।<sup>11</sup>

### **कुण्डलिनी जागरण में आसन, नाड़ीशोधन एवं प्राणायाम की भूमिका**

हठयोग परम्परा में कुण्डलिनी-जागरण को किसी आकस्मिक अथवा रहस्यमय घटना के रूप में नहीं स्वीकार किया गया है, बल्कि इसे दीर्घकालीन अनुशासित साधना का स्वाभाविक परिणाम माना गया है। इस साधना की आधारभूमि शरीर, प्राण और मन की क्रमिक शुद्धि है। अतः कुण्डलिनी के जागरण से पूर्व साधक को आसन, नाड़ीशोधन तथा प्राणायाम की विधियों में पर्याप्त प्रवीणता प्राप्त करना आवश्यक माना गया है। इन साधनों का उद्देश्य केवल शारीरिक स्थिरता प्राप्त करना नहीं, बल्कि सूक्ष्म प्राणतन्त्र को उस अवस्था तक पहुँचाना है जहाँ चेतना का ऊर्ध्वगमन सम्भव हो सके।<sup>12</sup> हठयोग प्रदीपिका में सिद्धासन को समस्त आसनों में सर्वोत्तम स्वीकार करते हुए कहा गया है कि इसके नियमित अभ्यास से नाड़ियों का शोधन होता है। यहाँ सिद्धासन का महत्त्व केवल आसन-स्थैर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्राण के सम्यक् प्रवाह तथा ध्यानोपयुक्त मानसिक एकाग्रता का भी आधार है। इस प्रकार आसन को कुण्डलिनी-साधना का प्रथम व्यावहारिक सोपान माना गया है।<sup>13</sup> शिव

<sup>8</sup> हठयोग प्रदीपिका, 3/2।

<sup>9</sup> शिव संहिता, 5/158।

<sup>10</sup> शिव संहिता, 2/27।

<sup>11</sup> हठयोग प्रदीपिका, 3/4।

<sup>12</sup> शिव संहिता, 3/11।

<sup>13</sup> हठयोग प्रदीपिका, 1/39।

संहिता भी साधना के प्रारम्भ में गुरु की आज्ञा, शारीरिक स्थिरता तथा विधिपूर्वक प्राणायाम के अभ्यास पर विशेष बल देती है। ग्रन्थ के अनुसार अनुशासित अभ्यास से नाडियों की शुद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप साधक का शरीर, प्राण तथा मन क्रमशः योग के उच्चतर अभ्यासों के योग्य बनते हैं। इस प्रकार नाडीशोधन को केवल शारीरिक शुद्धि न मानकर सम्पूर्ण साधना-प्रक्रिया की आन्तरिक तैयारी के रूप में प्रतिपादित किया गया है।<sup>14</sup> प्राणायाम के सम्बन्ध में दोनों ग्रन्थों का मत अत्यन्त सामञ्जस्यपूर्ण है। नाडियों के शुद्ध हुए बिना प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश सम्भव नहीं है और जब तक प्राण मध्य मार्ग में प्रवाहित नहीं होता, तब तक मनोन्मनी अथवा राजयोग की अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती।<sup>15</sup> शिव संहिता भी नाडीशुद्धि के उपरान्त योगी में उत्पन्न होने वाले बाह्य एवं आन्तरिक लक्षणों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट करती है कि यही अवस्था आगे चलकर कुम्भक-सिद्धि तथा उच्चतर योगाभ्यास का आधार बनती है।<sup>16</sup> इस आधार पर यह स्पष्ट होता है कि कुण्डलिनी-जागरण का वास्तविक प्रारम्भ आसन या प्राणायाम से पृथक् नहीं है। ये सभी साधन परस्पर सम्बद्ध चरण हैं, जिनके माध्यम से प्राण की चञ्चलता नियंत्रित होती है, नाडियों का शोधन होता है और सुषुम्ना मार्ग क्रमशः सक्रिय होने लगता है। फलतः कुण्डलिनी-जागरण किसी एक क्रिया का परिणाम न होकर सम्पूर्ण हठयोग-साधना की क्रमबद्ध परिपक्वता का स्वाभाविक निष्कर्ष है।

### **बन्ध एवं मुद्राओं की भूमिका कुण्डलिनी के ऊर्ध्वगमन में**

हठयोग में बन्ध एवं मुद्राएँ केवल शारीरिक अभ्यास नहीं हैं, अपितु वे ऐसी सूक्ष्म योग-प्रक्रियाएँ हैं जिनका उद्देश्य प्राणशक्ति के प्रवाह को नियन्त्रित कर उसे ऊर्ध्वमुखी बनाना है। यदि आसन और प्राणायाम साधना की आधारभूमि निर्मित करते हैं, तो बन्ध एवं मुद्राएँ उसी साधना को उसकी चरम परिणति तक पहुँचाने का कार्य करती हैं। कुण्डलिनी-जागरण की प्रक्रिया में इनका स्थान इसलिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है कि इनके माध्यम से प्राण का प्रवाह सुषुम्ना में प्रविष्ट होकर चेतना के क्रमिक उत्कर्ष का कारण बनता है।<sup>17</sup> जब साधक सिद्धासन में स्थिर हो जाता है, तब बन्धत्रय—मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध तथा जालन्धरबन्ध—स्वाभाविक रूप से सिद्ध होने लगते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि बन्धों की सिद्धि बाह्य प्रयत्न का परिणाम मात्र नहीं, बल्कि साधना की परिपक्वता का सूचक है। इन बन्धों के समन्वित अभ्यास से प्राण और अपान का संतुलन स्थापित होता है तथा उनकी संयुक्त शक्ति कुण्डलिनी के जागरण हेतु अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करती है।<sup>18</sup> शिव संहिता के अनुसार मूलाधार में स्थित सुप्ता कुण्डलिनी को अपानवायु के नियन्त्रण एवं योगाभ्यास के द्वारा जागृत किया जाता है। यह जागरण किसी प्रतीकात्मक अवधारणा के रूप में नहीं, बल्कि साधना की वास्तविक आन्तरिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें शक्ति क्रमशः ऊर्ध्वगामी होकर सुषुम्ना मार्ग का अनुसरण करती है।<sup>19</sup> हठयोग प्रदीपिका शक्तिचालन की इस प्रक्रिया को कुण्डलिनी के जागरण तथा सुषुम्ना के उद्घाटन से जोड़ती है। ग्रन्थ के अनुसार जब कुण्डलिनी जागृत होती है, तब ब्रह्मद्वार का अवरोध दूर हो जाता है और प्राण का प्रवाह मध्य मार्ग में सहज रूप से होने लगता है। परिणामस्वरूप मन का आलम्बन क्षीण होने लगता है तथा साधक मनोन्मनी की अवस्था की ओर अग्रसर होता है।<sup>20</sup>

<sup>14</sup> शिव संहिता, 3/29।

<sup>15</sup> हठयोग प्रदीपिका, 2/4।

<sup>16</sup> शिव संहिता, 3/30।

<sup>17</sup> हठयोग प्रदीपिका, 3/5।

<sup>18</sup> हठयोग प्रदीपिका, 1/42।

<sup>19</sup> शिव संहिता, 4/105।

<sup>20</sup> हठयोग प्रदीपिका, 3/101।

### कुण्डलिनी जागरण एवं सुषुम्ना प्रवेश : चेतना के रूपान्तरण की प्रक्रिया

हठयोग की साधना का वास्तविक उद्देश्य केवल कुण्डलिनी का जागरण नहीं, बल्कि जागृत शक्ति का सुषुम्ना मार्ग में ऊर्ध्वगमन है। योगग्रन्थों के अनुसार जब तक प्राण का प्रवाह इडा और पिङ्गला के द्वैत में संचालित होता रहता है, तब तक साधक की चेतना भी विषयगत प्रवृत्तियों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाती। इसके विपरीत, जैसे ही कुण्डलिनी जागृत होकर सुषुम्ना में प्रविष्ट होती है, चेतना का प्रवाह बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर परिवर्तित होने लगता है। यही अवस्था साधक के आन्तरिक रूपान्तरण का वास्तविक प्रारम्भ है।<sup>21</sup> कुण्डलिनी के जागरण से ब्रह्मद्वार का उद्घाटन होता है और प्राण सहज रूप से सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगता है। यहाँ 'ब्रह्मद्वार' का अभिप्राय उस सूक्ष्म आध्यात्मिक मार्ग से है, जिसके सक्रिय होने पर साधक की चेतना स्थूल अनुभवों की सीमा का अतिक्रमण कर उच्चतर अनुभूति की ओर उन्मुख होती है। इस अवस्था में प्राण का प्रवाह केवल श्वास-प्रश्वास की शारीरिक क्रिया न रहकर आध्यात्मिक उन्नयन का साधन बन जाता है।<sup>22</sup> कुण्डलिनी के जागरण के उपरान्त समस्त चक्र क्रमशः सक्रिय होते हैं तथा साधक की आन्तरिक शक्ति का विकास होने लगता है। इस प्रक्रिया में चेतना का केन्द्र बाह्य विषयों से हटकर आत्मानुभूति की दिशा में अग्रसर होता है। परिणामस्वरूप साधक के भीतर प्राण, मन तथा बुद्धि का समन्वय स्थापित होने लगता है, जो योग की उच्चतर अवस्थाओं के लिए अनिवार्य आधार प्रदान करता है।<sup>23</sup> सुषुम्ना में प्राण के प्रवाहित होने पर मन क्रमशः निरालम्ब हो जाता है। मन की यह निरालम्बता चित्तवृत्तियों के क्षय की अवस्था का द्योतक है, जिसमें विषय-आश्रित मानसिक प्रवृत्तियाँ स्वतः शान्त होने लगती हैं। इस अवस्था को मनोन्मनी कहा गया है, जहाँ मन का सामान्य कार्य-व्यापार समाप्त होकर वह उच्चतर चेतना में अवस्थित होने लगता है।<sup>24</sup>

### कुण्डलिनी साधना एवं राजयोग की प्राप्ति

हठयोग के समस्त साधनात्मक उपक्रमों का परम लक्ष्य राजयोग की उपलब्धि है। इस तथ्य को हठयोग प्रदीपिका तथा शिव संहिता दोनों समान रूप से स्वीकार करते हैं। यद्यपि इन ग्रन्थों में आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा तथा कुण्डलिनी-जागरण का अत्यन्त विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है, तथापि इनका उद्देश्य इन साधनों तक सीमित नहीं है। इन सभी का प्रयोजन साधक को उस उच्चतम चेतना-अवस्था तक पहुँचाना है जहाँ मन, प्राण तथा आत्मा का समन्वय स्थापित होकर राजयोग की सिद्धि होती है। अतः हठयोग को राजयोग का विरोधी न मानकर उसका अनिवार्य साधन स्वीकार करना ही इन दोनों ग्रन्थों का मूल अभिप्राय है।<sup>25</sup> हठयोग प्रदीपिका इस सिद्धान्त को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित करती है कि हठयोग के बिना राजयोग तथा राजयोग के बिना हठयोग की सिद्धि सम्भव नहीं है। इस प्रकार ग्रन्थ दोनों को एक ही साधना-पद्धति के परस्पर पूरक पक्षों के रूप में प्रस्तुत करता है। यहाँ हठयोग बाह्य अनुशासन एवं प्राण-शोधन का माध्यम है, जबकि राजयोग उसी अनुशासन की आन्तरिक परिपक्वता का स्वरूप है। इस प्रकार दोनों के मध्य साधन और साध्य का सम्बन्ध स्थापित होता है।<sup>26</sup> शिव संहिता में भी राजयोग की प्राप्ति को कुण्डलिनी-जागरण एवं प्राण-नियमन का स्वाभाविक परिणाम माना गया है। ग्रन्थ के अनुसार जब साधक नियमित अभ्यास, गुरु-उपदेश तथा अन्तर्मुख साधना के द्वारा प्राण को स्थिर कर लेता है, तब क्रमशः समाधि की अवस्था का उदय होता है। इस प्रकार राजयोग किसी पृथक् साधना-पद्धति का नाम नहीं, बल्कि कुण्डलिनी के पूर्ण जागरण

<sup>21</sup> हठयोग प्रदीपिका, 3/2।

<sup>22</sup> हठयोग प्रदीपिका, 3/3।

<sup>23</sup> शिव संहिता, 4/22।

<sup>24</sup> हठयोग प्रदीपिका, 4/12।

<sup>25</sup> हठयोग प्रदीपिका, 1/67।

<sup>26</sup> हठयोग प्रदीपिका, 2/76।

और चित्त की परिपक्व अवस्था का दार्शनिक प्रतिफल है।<sup>27</sup> हठयोग प्रदीपिका में आगे यह भी प्रतिपादित किया गया है कि जब प्राण सुषुम्ना में स्थिर होकर चित्त समस्त बाह्य आलम्बनों का परित्याग कर देता है, तब साधक राजयोग पद को प्राप्त होता है। इस अवस्था में साधना प्रयासमूलक न रहकर स्वाभाविक अनुभव का रूप धारण कर लेती है। यहाँ मन की चञ्चलता समाप्त होकर उसका पूर्ण लय उच्चतर चेतना में होता है। फलतः साधक के भीतर आत्मानुभूति, समत्व तथा आन्तरिक आनन्द का उदय होता है।<sup>28</sup>

### कुण्डलिनी साधना, राजयोग एवं समाधि का अन्तर्सम्बन्ध

हठयोग की साधना का चरम प्रतिफल समाधि है, किन्तु यह अवस्था किसी एक साधन अथवा एकमात्र अभ्यास से उपलब्ध नहीं होती। हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता के समन्वित अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समाधि की प्राप्ति एक क्रमिक आध्यात्मिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें कुण्डलिनी-जागरण, प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश, चित्त की स्थिरता तथा राजयोग की उपलब्धि परस्पर सम्बद्ध अवस्थाएँ हैं। अतः समाधि को हठयोग से पृथक् न मानकर उसी की सर्वोच्च परिणति के रूप में समझना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।<sup>29</sup> हठयोग प्रदीपिका में समाधि का स्वरूप मन और प्राण के समरस लय के रूप में प्रतिपादित किया गया है। ग्रन्थ के अनुसार जब प्राण का प्रवाह नियंत्रित होकर मन भी अपने समस्त संकल्प-विकल्पों का परित्याग कर देता है, तब साधक ऐसी चेतनावस्था में प्रतिष्ठित होता है जहाँ द्वैत का अनुभव लुप्त होने लगता है। इस स्थिति में जीवात्मा और परमात्मा के मध्य अनुभूत भेद क्रमशः समाप्त होकर अद्वैतानुभूति का उदय होता है।<sup>30</sup> इसी प्रकार शिव संहिता समाधि को आत्मदर्शन की अवस्था के रूप में निरूपित करती है। ग्रन्थ के अनुसार जब साधक आत्मा को आत्मा के द्वारा ही अनुभव करता है, तब बाह्य विषयों की समस्त प्रतीतियाँ स्वतः क्षीण हो जाती हैं। फलतः कर्म, वासनाएँ तथा विषयासक्ति क्रमशः निष्प्रभावी होकर आत्मचैतन्य का प्रत्यक्ष अनुभव कराती हैं। इस प्रकार समाधि यहाँ किसी अचेतन स्थिति का नहीं, बल्कि सर्वोच्च आत्मबोध का द्योतक है।<sup>31</sup> सुषुम्ना में प्राण की स्थिर गति तथा मनोन्मनी अवस्था की सिद्धि के उपरान्त साधक का मन नाद, विषय तथा इन्द्रिय-विकारों से ऊपर उठकर परम शान्ति में स्थित हो जाता है। यह अवस्था राजयोग का व्यावहारिक स्वरूप है, जहाँ साधना और साध्य का भेद समाप्त हो जाता है। यहाँ न तो बाह्य प्रयास की आवश्यकता रहती है और न ही चित्त को बलपूर्वक एकाग्र करने की; अपितु समस्त प्रक्रिया स्वाभाविक आत्मानुभूति में परिणत हो जाती है।<sup>32</sup>

### तुलनात्मक विश्लेषण

हठयोग प्रदीपिका तथा शिव संहिता भारतीय योग-साहित्य के दो ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, जिनमें कुण्डलिनी साधना को आध्यात्मिक उत्कर्ष का अनिवार्य साधन स्वीकार किया गया है। यद्यपि दोनों ग्रन्थों का मूल उद्देश्य साधक को राजयोग की उपलब्धि तक पहुँचाना है, तथापि उनकी प्रस्तुति, दार्शनिक अभिव्यक्ति तथा साधना-विधि में कुछ विशिष्ट भेद भी दृष्टिगोचर होते हैं। यही समानताएँ एवं भिन्नताएँ इन दोनों ग्रन्थों की स्वतंत्र पहचान निर्मित करती हैं।<sup>33</sup> सर्वप्रथम, दोनों ग्रन्थ कुण्डलिनी को मानव शरीर में निहित सर्वोच्च चेतना-शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। दोनों के अनुसार यही शक्ति सुषुम्ना मार्ग में जागृत

<sup>27</sup> शिव संहिता, 3/80।

<sup>28</sup> हठयोग प्रदीपिका, 2/77।

<sup>29</sup> हठयोग प्रदीपिका, 4/6।

<sup>30</sup> हठयोग प्रदीपिका, 4/7।

<sup>31</sup> शिव संहिता, 2/56।

<sup>32</sup> हठयोग प्रदीपिका, 4/20।

<sup>33</sup> हठयोग प्रदीपिका, 3/1।

होकर साधक को साधारण मानसिक अवस्था से उच्चतर आध्यात्मिक अनुभव की ओर ले जाती है। तथापि शिव संहिता कुण्डलिनी के दार्शनिक एवं तात्त्विक स्वरूप का अधिक विस्तृत निरूपण करती है। उसमें कुण्डलिनी को पराशक्ति, जगत्-सृष्टि की आधारशक्ति तथा समस्त तत्त्वों की जननी के रूप में प्रतिपादित किया गया है। इसके विपरीत हठयोग प्रदीपिका का प्रमुख आग्रह साधना की व्यावहारिक प्रक्रिया पर केन्द्रित है, जहाँ कुण्डलिनी-जागरण को योगाभ्यास की उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दूसरा महत्वपूर्ण अन्तर साधना-पद्धति के विवेचन में परिलक्षित होता है। हठयोग प्रदीपिका आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा तथा नादानुसन्धान को क्रमबद्ध साधना-पद्धति के रूप में प्रस्तुत करती है। प्रत्येक साधन अगले सोपान की तैयारी करता है और अन्ततः राजयोग की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। इसके विपरीत शिव संहिता साधना के प्रत्येक अंग को गुरु-उपदेश, श्रद्धा, अभ्यास तथा अन्तःशुद्धि के साथ जोड़ते हुए योग को व्यापक आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में प्रतिपादित करती है। अतः जहाँ हठयोग प्रदीपिका साधना की तकनीकी संरचना को व्यवस्थित करती है, वहीं शिव संहिता उसके आध्यात्मिक एवं दार्शनिक आधार को अधिक विस्तार प्रदान करती है।<sup>34</sup> राजयोग की अवधारणा के सम्बन्ध में भी दोनों ग्रन्थों में उल्लेखनीय सामञ्जस्य विद्यमान है। हठयोग और राजयोग परस्पर अविभाज्य हैं तथा एक के बिना दूसरे की सिद्धि सम्भव नहीं है। दूसरी ओर शिवसंहिता समाधि, आत्मदर्शन तथा ब्रह्मानुभूति को साधना की चरम उपलब्धि मानते हुए यह प्रतिपादित करती है कि कुण्डलिनी-जागरण का वास्तविक फल आत्मस्वरूप की अनुभूति है। इस प्रकार दोनों ग्रन्थ भिन्न शैली अपनाते हुए भी साधना के अन्तिम लक्ष्य के विषय में पूर्णतः एकमत हैं। समाधि के स्वरूप के सम्बन्ध में भी दोनों ग्रन्थों की अभिव्यक्ति परस्पर पूरक है। हठयोग प्रदीपिका समाधि को मन, प्राण तथा नाद के क्रमिक लय की अवस्था के रूप में व्याख्यायित करती है, जबकि शिव संहिता आत्मसाक्षात्कार, वासनाक्षय तथा कर्मबन्धन से निवृत्ति पर विशेष बल देती है। वस्तुतः दोनों दृष्टियाँ विरोधी नहीं, बल्कि एक ही आध्यात्मिक अनुभव के भिन्न-भिन्न आयामों को उद्घाटित करती हैं। जहाँ एक ग्रन्थ योग की साधना-प्रक्रिया का सूक्ष्म विश्लेषण करता है, वहीं दूसरा उसकी आध्यात्मिक परिणति का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत करता है।<sup>35</sup> उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता को पृथक् परम्पराओं के ग्रन्थ मानने के स्थान पर एक-दूसरे के पूरक ग्रन्थ के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है। दोनों का सम्मिलित अध्ययन यह सिद्ध करता है कि कुण्डलिनी साधना का वास्तविक उद्देश्य किसी चमत्कारिक सिद्धि का अर्जन नहीं, बल्कि चेतना का क्रमिक परिष्कार, प्राण का सुषुम्ना में स्थिरीकरण तथा अन्ततः राजयोग एवं समाधि की उपलब्धि है। यही इन दोनों ग्रन्थों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं स्थायी देन है।

### निष्कर्ष

हठयोग परम्परा में कुण्डलिनी साधना केवल शारीरिक अथवा प्राणिक अभ्यास का विषय नहीं है, बल्कि यह सम्पूर्ण योग-साधना का केन्द्रीय तत्त्व है, जिसके माध्यम से साधक राजयोग की चरम अवस्था तक पहुँचता है। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हठयोग प्रदीपिका तथा शिव संहिता दोनों ग्रन्थ कुण्डलिनी को योगमार्ग की मूल प्रेरक शक्ति स्वीकार करते हैं, किन्तु उसकी व्याख्या एवं साधना-पद्धति में दोनों की प्रस्तुति का अपना विशिष्ट स्वरूप है। हठयोग प्रदीपिका में कुण्डलिनी जागरण को हठयोग की क्रमबद्ध साधना—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा तथा नादानुसन्धान—का स्वाभाविक परिणाम माना गया है। ग्रन्थ के अनुसार नाडी-शुद्धि, प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश तथा मन का उन्मनी अवस्था में प्रतिष्ठित होना, कुण्डलिनी-जागरण के

<sup>34</sup> हठयोग प्रदीपिका, 1/56।

<sup>35</sup> शिव संहिता, 2/57।

अनिवार्य सोपान हैं। यही प्रक्रिया अन्ततः राजयोग, लय तथा समाधि की उपलब्धि का आधार बनती है। दूसरी ओर शिव संहिता कुण्डलिनी को केवल योगिक शक्ति के रूप में नहीं, बल्कि परमदैवी चेतना के रूप में निरूपित करती है। इस ग्रन्थ में गुरु-उपदेश, श्रद्धा, अभ्यास, प्राणसंयम तथा शक्तिचालन-मुद्रा के माध्यम से कुण्डलिनी के जागरण का वर्णन अधिक दार्शनिक एवं तात्त्विक धरातल पर किया गया है। यहाँ साधना का चरम लक्ष्य जीवात्मा और परमात्मा का अभेदानुभव है, जो समाधि की पूर्णवस्था में परिणत होता है। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि दोनों ग्रन्थों में राजयोग को हठयोग का विरोधी नहीं, बल्कि उसका चरम फल माना गया है। हठयोग प्रदीपिका स्पष्टतः प्रतिपादित करती है कि हठयोग और राजयोग एक-दूसरे के पूरक हैं तथा एक के अभाव में दूसरे की सिद्धि सम्भव नहीं। शिव संहिता भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है कि कुण्डलिनी-जागरण के बिना ब्रह्ममार्ग का उद्घाटन नहीं होता और बिना ब्रह्ममार्ग के समाधि की पूर्णता सम्भव नहीं। शोध के आधार पर यह निष्कर्ष स्थापित किया जा सकता है कि कुण्डलिनी-साधना का वास्तविक उद्देश्य केवल अलौकिक सिद्धियों की प्राप्ति नहीं, बल्कि चित्त की पूर्ण एकाग्रता, प्राण की अन्तर्मुखता, अहंभाव का लय तथा आत्मचैतन्य की परम चेतना में प्रतिष्ठा है। अतः राजयोग की प्राप्ति कुण्डलिनी-साधना का स्वाभाविक एवं परम परिणाम है, न कि उससे पृथक् कोई स्वतंत्र साधना।